

न्याय (दृष्टांत वाक्य)

संस्कृत में न्याय (नियन्ति अनेन ; नि + इ + घं) का एक अर्थ समानता, सादृश्य, लोकरूढ नीतिवाक्य, उपयुक्त दृष्टान्त, निर्देशना (likeness, analogy, a popular maxim or apposite illustration) आदि होता है। अर्थात् कोई विलक्षण घटना सूचित करनेवाली उक्ति जो उपस्थित बात पर घटती हो, 'न्याय' कहलाती है। ऐसे दृष्टान्त वाक्यों (या कहावतों) का व्यवहार लोक में कोई प्रसंग आ पड़ने पर होता है।

'लोकन्याय' का अर्थ है, समाज में प्रचलित और सुप्रसिद्ध उदाहरणों को एक नाम दे देना और उचित स्थान पर उस नाम का उपयोग करके कम शब्दों में बड़ी बात कह देना। लोकरूढ नीतिवाक्यों के प्रयोग से कम शब्दों में और तर्कसम्मत ढंग से विचार व्यक्त करने में सुविधा होती है। संस्कृत में इनका प्रयोग व्याकरण और आयुर्वेद ग्रन्थों में हुआ है। [1][2] शास्त्रों में जटिल बातों को सरल तरीके से कहने की अन्य युक्तियाँ भी हैं, जैसे- तन्त्रयुक्ति, ताच्छील्य, अर्थाश्रय, कल्पना, वादमार्ग आदि।

न्याय दो प्रकार के होते हैं - लौकिकन्याय तथा शास्त्रीयन्याय।

संस्कृत में लौकिक न्याय की सूक्तियों के भी अनेक संग्रह-ग्रन्थ हैं। इनमें भुवनेश की लौकिकन्यायसाहस्री के अलावा लौकिक न्यायसंग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश, लौकिकन्यायरत्नाकर आदि हैं। लौकिक न्याय संग्रह नामक ग्रंथ के कर्ता रघुनाथ हैं। इसमें ३६४ न्यायों की सूची है।

कुछ उदाहरण

नीचे संस्कृत में प्रयुक्त कुछ न्याय (लोकरूढ नीति वाक्यांश) दिये हुए हैं।

अरुन्धतीदर्शनन्याय - ज्ञात से अज्ञात की ओर जाना

शाखाचंद्रन्याय -

काकतलीयन्याय -

अजाकृषाणीन्याय -

अन्धचटकन्याय - अन्धे के हाथ बटेर लगना

अन्धगजन्याय - अन्धा और हाथी

अन्धगालालन्याय - अन्धा और गाय की पूँछ

अन्धपंगुन्याय - अन्धा और लंगडा

अन्धदर्पणन्याय - अन्धा और दर्पण

नष्टाश्वदग्धरथन्यास - नष्ट अश्व और जला हुआ रथ

अन्धपरम्परान्याय - अन्ध परम्परा

अरण्यरोदनन्याय - वन में रोना

स्थूणानिखनन्याय - खूँटे को हिलाकर पक्का करना

अर्धकुक्कुटीन्याय - आधी मुर्गी खाने के लिये, आधी अण्डे देने के लिये

अशोकवनिकान्याय - अशोक वाटिका न्याय (सीता को अशोक वाटिका में ही क्यों रखा?)

अश्मलोष्टन्याय - पत्थर से ईंट (ढेला) नरम होता है। यह न्याय यह दर्शाने के लिये उपयुक्त होता है कि शेर को भी कभी 'सवा शेर' मिल जाता है। रूई की अपेक्षा ढेला बहुत कठोर है किन्तु पत्थर उससे भी अधिक कठोर होता है।

दृषदिष्टिकान्याय -

कण्ठचामीकरन्याय - गले में जेवर का न्याय

कदम्बकोरक (कदम्बगोलक) न्याय - कदम्ब की कली का न्याय ; यह न्याय तब उपयुक्त होता है जब उदय के साथ ही विकास आरम्भ हो जाय। ज्ञातव्य है कि कदम्ब का कली/फूल से फल बनने की प्रक्रिया एकसाथ ही होती है।

कफोणीगुडन्याय - कोहनी पर लगे गुड का न्याय (चाट भी नहीं सकते)

कम्बलनिर्णेजन्याय - कंबल धोने का न्याय (काम कुछ, परिणाम कुछ और)

काकदन्तपरीक्षान्याय (काकदन्तगवेषणन्याय) - कौवे के दांत गिनना (ब्यर्थ का काम करना)

काकाक्षिगोलकन्याय - कौवे के आंख के गोलक का न्याय (दो भिन्न अर्थ सूचित करने वाले शब्द या शब्द-समूह)

कूपखानकन्याय - कुआँ खोदने वाले का न्याय (अंगों पर मिट्टी लगी हो तो भी कुएं से पानी निकलने पर धो सकते हैं)

कूपमण्डूकन्याय - कुएं का मेढक (जिसकी सोच सीमित और संकुचित हो)

कूपयन्त्रघटिकान्याय - रहट की बाल्टी (घटिका) का न्याय

खलेकपोतन्याय - खलिहान पर कबूतर (एक साथ धावा बोलते हैं)

गुडजिह्विकान्याय - गुड और जीभ (मीठा लेप की हुई औषधि)

घट्टकुटीप्रभातन्याय - चुंगी नाके की प्रभात

घुणाक्षरन्याय - दीमक और अक्षर का न्याय (दीमक के काटने से अक्षर बनना)

चोरापराधेमाण्डव्यदण्डन्याय - चोर करे अपराध और संन्यासी को फांसी

तमोदीपन्याय - अंधेरे को देखने के लिये दीया (दीप)

देहलीदीपन्याय - दहलीज पर रखा हुआ दीया

तुष्यतुदुर्जनन्याय - दुर्जनों का तुष्टीकरण

तृणजलौकान्याय - घास और जोंक का न्याय

दण्डापूपन्याय - लकड़ी पर लगी मिठाई (लकड़ी के साथ ही गई)

क्षीरनीरन्याय x तिलतण्डुलन्याय (हंसक्षीरन्याय) - दूध का दूध, पानी का पानी

विषकृमिन्याय - विष के कृमि (विष में ही जिंदा रहते हैं)

स्वामिभृत्यन्याय - मालिक और नौकर (संबंध)

वीचितरंन्याय - लहरों से लहर पैदा होती है।

वृद्धकुमारीवाक्य (वर) न्याय - वृद्ध कुमारी का वाक्य (प्रस्ताव)

सूचीकटाहन्याय - सुई और कडाही

नृपनापितन्याय - राजा और नाई

पिष्टपेषणन्याय - आटे को पीसना (से क्या लाभ?)

प्रधानमल्लनिर्बहणन्याय - मुख्य योद्धा (मल्ल) का हार जाना

मण्डूकप्लुतिन्याय - मेंढक की छलांग

वटेयक्षन्याय - बरगद का भूत (सुनी-सुनाई बात)

समुद्रतरंन्याय - समुद्र और तरंग (एक ही चीज के रूप)

स्थालीपुलाकन्याय - पके भात की परीक्षा के लिये एक दाने की परीक्षा ही काफी है।

कुछ न्यायों का परिचय

कुछ प्रचलित न्यायों का परिचय अकारादि क्रम से नीचे दिया गया है-

(१) अजाकृपाणीय न्याय—कहीं तलवार लटकती थी, नीचे से बकरा गया और वह संयोग से उसकी गर्दन पर गिर पड़ी। जहाँ दैवसंयोग से कोई विपत्ति आ पड़ती है वहाँ इसका व्यवहार होता है।

(२) अजातपुत्रनामोत्कीर्तन न्याय—अर्थात् पुत्र न होने पर भी नामकरण होने का न्याय। जहाँ कोई बात होने पर भी आशा के सहारे लोग अनेक प्रकार के आयोजन बाँधने लगते हैं वहाँ यह कहा जाता है।

(३) अध्यारोप न्याय—जो वस्तु जैसी न हो उसमें वैसे होने का (जैसे रज्जु में सर्प हीने का) आरोप। वेदांत की पुस्तकों में इसका व्यवहार मिलता है।

(४) अंधकूपपतन न्याय—किसी भले आदमी ने अंधे को रास्ता बतला दिया और वह चला, पर जाते जाते कूएँ में गिर पड़ा। जब किसी अनधिकारी को कोई उपदेश दिया जाता है और वह उसपर चलकर अपने अज्ञान आदि के कारण चूक जाता है या अपनी हानि कर बैठता है तब यह कहा जाता है।

(५) अंधगज न्याय—कई जन्मांधों ने हाथी कैसा होता है यह देखने के लिये हाथी को टठोला। जिसने जो अंग टटोल पाया उसने हाथी का आकार उसी अंग का सा समझा। जिसने पूँछ टटोली उसने रस्सी के आकार का, जिसने पैर टटोला उसने खंभे के आकार रस्सी के आकार का, जिसने पैर टटोला उसने खंभे के आकार का समझा। किसी विषय के पूर्ण अंग का ज्ञान न होने पर उसके संबंध में जब अपनी अपनी समझ के अनुसार भिन्न भिन्न बातें कही जाती हैं तब इस उक्ति का प्रयोग करते हैं।

(६) अंधगोलांगूल न्याय—एक अंधा अपने घर के रास्ते से भटक गया था। किसी ने उसके हाथ में गाय की पूँछ पकड़ाकर कह दिया कि यह तुम्हें तुम्हारे स्थान पर पहुँचा देगी। गाय के इधर उधर दौड़ने से अंधा अपने घर तो पहुँचा नहीं, कष्ट उसने भले ही

पाया। किसी दुष्ट या मूर्ख के उपदेश पर काम करके जब कोई कष्ट या दुःख उठाता है तब यह कहा जाता है।

(७) अंधचटक न्याय—अंधे के हाथ बटेर।

(८) अंधपरंपरा न्याय—जब कोई पुरुष किसी को कोई काम करते देखकर आप भी वही काम करने लगे तब वहाँ यह कहा जाता है।

(९) अंधपंगु न्याय—एक ही स्थान पर जानेवाला एक अंधा और एक लँगड़ा यदि मिल जायँ तो एक दुसरे की सहायता से दोनों वहाँ पहुँच सकते हैं। सांख्य में जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग से सृष्टि होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही गई है।

(१०) अपवाद न्याय—जिस प्रकार किसी वस्तु के संबंध में ज्ञान हो जाने से भ्रम नहीं रह जाता उसी प्रकार। (वेदांत)।

(११) अपराह्णच्छाया न्याय— जिस प्रकार दोपहर की छाया बराबर बढ़ती जाती है उसी प्रकार सज्जनों की प्रीति आदि के संबंध में यह न्याय कहा जाता है।

(१२) अपसारिताग्निभूतल न्याय— जमीन पर से आग हटा लेने पर भी जिस प्रकार कुछ देर तक जमीन गरम रहती है उसी प्रकार धनी धन के न रह जाने पर भी कुछ दिनों तक अपनी अकड रखता है।

(१३) अरण्यरोदन न्याय— जंगल में रोने के समान बात। जहाँ कहने पर कोई ध्यान देनेवाला न हो वहाँ इसका प्रयोग होता है।

(१४) अर्कमधु न्याय— यदि मदार से ही मधु मिल जाय तो उसके लिये अधिक परिश्रम व्यर्थ है। जो कार्य सहज में हो उसके लिये इधर उधर वहुत श्रम करने की आवश्यकता नहीं।

(१५) अर्द्धजरतीय न्याय— एर ब्राह्मण देवता अर्थकष्ट से दुःख हो नित्य अपनी गाय लेकर बाजार में बेचने जाते पर वह न बिकती। बात यह थी कि अवस्था पूछने पर वे उसकी बहुत अवस्था बतलाते थे। एक दिन एक आदमी ने उनसे न बिकने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा जिस प्रकार आदमी की अवस्था अधिक होने पर उसकी कदर बढ़ जाती है उसी प्रकार मैंने गाय के संबंध में भी समझा था। उसने आगे ऐसा न कहने की सलाह दी। ब्राह्मण ने कोचा कि एक बार गाय को बुझी कहकर अब फिर जवान कैसे कहूँ। अंत में उन्होंने स्थिर किया कि आत्मा तो बुझी होती नहीं देह बुझी होती है। अतः इसे मैं 'आधी बुझी आधी जवान' कहूँगा। जब किसी की कोई बात इस पक्ष में भई और उस पक्ष में भी हो तब यह उक्ति कही जाती है।

(१६) अशोकवनिका न्याय— अशोक बन में जाने के समान (जहाँ छाया सौरम आदि सब कुछ प्राप्त हो)। चब किसी एक ही स्थान पर सब कुछ प्राप्त हो लाय और कहीं जाने की आवश्यकता न हो तब यह कहा जाता है।

(१७) अश्मलोष्ठ न्याय— अर्थात् तराजू पर रखने के लिये पत्थर तो ढेले से भी भारी है। यह विषमता सूचित करने के अवसर पर ही कहा जाता है। जहाँ दो वस्तुओं में सापेक्षिकता सूचित करनी होती है। वहाँ 'पाषाणेष्टिक न्याय' कह जाता है।

(१८) अस्नेहदीप न्याय— बिना तेल के दीये की सी बात। थोड़े ही काल रहनेवाली बात देखकर यड कहा जाता है।

(१९) अस्नेहदप न्याय— साँप के कुंडल मारकर बैठने के समान। किसी स्वाभाविक बात पर।

(२०) अहि नकुल न्याय— साँप नेवले के समान। स्वाभाविक विरोध या बैर सूचित करने के लिये।

(२१) आकाशापरिच्छिन्नत्व न्याय— आकाश के समान अपरिच्छिन्न।

(२२) आभ्राणक न्याय—लोकप्रवाद के समान।

(२३) आम्रवण न्याय—जिस प्रकार किसी वन में यदि आम के पेड़ अधिक होते हैं तो उसे 'आम का वन' ही कहते हैं, यद्यपि और भी पेड़ उस वन में रहते हैं, उसी प्रकार जहाँ औरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही उल्लेख किया जाता है वहाँ यह उक्ति कही जाती

है।

(२४) उत्पाटितदतनाग न्याय—दाँत तोड़े हुए साँप के समान। कुछ करने धरने या हानि पहुँचाने में असमर्थ हुए मनुष्य के संबंध में।

(२५) उदकनिमज्जन न्याय—कोई दोषी है या निर्दोष इसकी एक दिव्य परीक्षा प्राचीन काल में प्रचलित थी। दोषी को पानी में खड़ा करके किसी ओर बाणा छोड़ते थे और बाण छोड़ने के साथ ही अभियुक्त को तबतक डूबे रहने के लिये कहते थे जबतक वह छोड़ा हुआ बाण वहाँ से फिर छूटने पर लौट न आवे। यदि इतने बीच में डूबनेवाले का कोई अंग बाहर न दिखाई पड़ा तो उसे निर्दोष समझते थे। जाहाँ सत्या-स्तय की बात आती है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(२६) उभयतः पाशरज्जु न्याय—जहाँ दोनों ओर विपत्ति हो अर्थात् दो कर्तव्यपक्षों में से प्रत्येक में दुःख हो वहाँ इसका व्यवहार होता है। 'साँप छछूँदर की गति'।

(२७) उष्ट्रकंटक भक्षण न्याय—जिस प्रकार थोड़े से सुख के लिये ऊँट काँटे खाने का कष्ट उठाता है उसी प्रकार जहाँ थोड़े से सुख के लिये अधिक कष्ट उठाया जाता है वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(२८) ऊपरवृष्टि न्याय—किसी बात का जहाँ कोई फल न हो वहाँ कहा जाता है।

(२९) कंठचामीकर न्याय—गले में सोने का हार हो और उसे इधर उधर ढूँढ़ता फिरे। आनंदस्वरूप ब्रह्म के अपने में रहते भी अज्ञानवश सुख के लिये अनेक प्रकार के दुःख भोगने के दृष्टांत में वेदांती कहते हैं।

(३०) कदंबगोलक न्याय—जिस प्रकार कदंब के गोले में सब फूल एक साथ हो जाते हैं, उसी प्रकार जहाँ कई बातें एक साथ हो जाती हैं वहाँ इसे कहते हैं। कुछ नैयायिक शब्दो-त्पत्ति में कई वर्णों के उच्चारण एक साथ मानकर उसके दृष्टांत में यह कहते हैं। यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार कदंब में सब तरफ किजल्क होते हैं वैसे सब जहाँ उत्पन्न होता है उसके सभी ओर उसकी तरंगों का प्रसार होता है।

(३१) कदलीफल न्याय—केला काटने पर ही फलता है इसी प्रकार नीच सीधे कहने से नहीं सुनते।

(३२) कफोनिगुड न्याय—सूत न कपास जुलाहों से मटकौवल।

(३३) करकंकण न्याय—'कंकण' कहने से ही हाथ के गहने का बोध हो जाता है, 'कर' कहने की आवश्यकता नहीं। पर कर कंकण कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'हाथ में पड़ा हुआ कड़ा'। इस प्रकार का जहाँ अभिप्राय होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(३४) काकतालीय न्याय—किसी ताड़ के पेड़ के नीचे कोई पथिक लेटा था और ऊपर एक कौवा बैठा था। कौवा किसी ओरको उड़ा और उसके उड़ने के साथ ही ताड़ का एक पका हुआ फल नीचे गिरा। यद्यपि फल पककर आपसे आप गिरा था तथापि पथिक ने दोनों बातों को साथ होते देख यही समझा कि कौवे के उड़ने से ही तालफल गिरा। जहाँ दो बातें संयोग से इस प्रकार एक साथ हो जाती हैं वहाँ उनमें परस्पर कोई संबंध न होते हुए भी लोग संबंध समझ लेते हैं। ऐसा संयोग होने पर यह कहावत कही जाती है।

(३५) काकदध्युपघातक न्याय—'कौवे से दही बचाना' कहने से जिस प्रकार 'कुत्ते, बिल्ली आदि सब जंतुओं से बचाना' समझ लिया जाता है उसी प्रकार जहाँ किसी वाक्य का अभिप्राय होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(३६) काकदंतगवेषण न्याय—कौवे का दाँत ढूँढ़ना निष्फल है अतः निष्फल प्रयत्न के संबंध में यह न्याय कहा जाता है।

(३७) काकाक्षिगोलक न्याय—कहते हैं, कौवे के एक ही पुतली होती है जो प्रयोजन के अनुसार कभी इस आँख में कभी उस आँख में जाती है। जहाँ एक ही वस्तु दो स्थानों में कार्य करे वहाँ के लिये यह कहावत है।

(३८) कारणगुणप्रक्रम न्याय—कारण का गुण कार्य में भी पाया जाता है। जैसे सूत का रूप आदि उससे बुने कपड़े में।

(३९) कुशकाशावलंबन न्याय—जैसे डूबता हुआ आदमी कुश काँस जो कुछ पाता है उसी को सहारे के लिये पकड़ता है, उसी प्रकार जहाँ कोई दृढ़ आधार न मिलने पर लोग इधर उधर की बातों का सहारा लेते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है। 'डूबते को तिनके का सहारा' बोलते भी हैं।

(४०) कूपखानक न्याय—जैसे कूआँ खोदनेवाले की देह में लगा हुआ कीचड़ उसी कूएँ के जल में साफ हो जाता है उसी प्रकार राम, कृष्ण आदि को भिन्न भिन्न रूपों में समझने से ईश्वर में भेद बुद्धि का जो देश लगता है वह उन्हीं की उपासना द्वारा ही अद्वैतबुद्धि हो जाने पर मिट जाता है।

(४१) कूपमंडूक न्याय—समुद्र का मेढक किसी कूएँ में जा पड़ा। कूएँ के मेढक ने पूछा 'भाई ! तुम्हारा समुद्र कितना बड़ा है।' उसने कहा 'बहुत बड़ा'। कूएँ के मेढक ने पूछा 'इस कूएँ के इतना बड़ा'। समुद्र के मेढक ने कहा 'कहाँ कूआँ, कहाँ समुद्र'। समुद्र से बड़ी कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं। इसपर कूएँ का मेढक जो कूएँ से बड़ी कोई वस्तु जानता ही न था बिगड़कर बोला 'तुम झूठे हो, कूएँ से बड़ी कोई वस्तु हो नहीं सकती'। जहाँ परिमित ज्ञान के कारण कोई अपनी जानकारी के ऊपर कोई दूसरी बात मानता ही नहीं वहाँ के लिये यह उक्ति है।

(४२) कूर्मांग न्याय—जिस प्रकार कछुआ जब चाहता है तब अपने सब अंग भीतर समेट लेता है और जब चाहता है बाहर करता है उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि और लय करता है।

(४३) कैमुतिक न्याय—जिसने बड़े बड़े काम किए उसे कोई छोटा काम करते क्या लगता है। उसी के दृष्टांत के लिये यह उक्ति कही जाती है

(४४) कौडिन्य न्याय—यह अच्छा है पर ऐसा होता तो और भी अच्छा होता।

(४५) गजभुक्त कपित्थ न्याय—हाथी के खाए हुए कैथ के समान ऊपर से देखने में ठीक पर भीतर भीतर निःसार और शून्य।

(४६) गडुलिकाप्रवाह न्याय—भेडिया धसान।

(४७) गणपति न्याय—एक बार देवताओं में विवाद चला कि सबमें पूज्य कौन है। ब्रह्मा ने कहा जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा पहले कर आवे वही श्रेष्ठ समझा जाय। सब देवता अपने अपने वाहनों पर चले। गणेश जी चूहे पर सवार सबके पीछे रहे। इतने में मिले नारद। उन्होंने गणेश जी को युक्ति बताई कि राम नाम लिखकर उसी की प्रदक्षिणा करके चटपट ब्रह्मा के पास पहुँच जाओ। गणपति ने ऐसा ही किया और देवताओं में वे प्रथम पूज्य हुए। इसी से जहाँ थोड़ी सी युक्ति से बड़ी भारी बात हो जाय वहाँ इसका प्रयोग करते हैं।

(४८) गतानुगतिक न्याय—कुछ ब्राह्मण एक घाट पर तर्पण किया करते थे। वे अपना अपना कुश एक ही स्थान पर रख देते थे जिससे एक का कुश दूसरा ले लेता था। एक दिन पहचान के लिये एक ने अपने कुश को ईंट से दबा दिया। उसकी देखा देखी दूसरे दिन सबने अपने कुश पर ईंट रखी। जहाँ एक की देखादेखी लोग कोई काम करने लगते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(४९) गुड़जिह्विका न्याय—जिस प्रकार बच्चे को कड़वी औषध खिलाने के लिये उसे पहले गुड़ देकर फुसलाते हैं उसी प्रकार जहाँ अरुचिकर या कठिन काम कराने के लिये पहले कुछ प्रलोभन दिया जाता है वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(५०) गोवलीरवर्द न्याय—'वलीवर्द' शब्द का अर्थ है बैल। जहाँ यह शब्द गो के साथ हो वहाँ अर्थ और भी जल्दी खुल जाता है। ऐसे शब्द जहाँ एक साथ होते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है।

(५१) घट्टकुटीप्राभात न्याय—एक बनिया घाट के महसूल से बचने के लिये ठीक रास्ता छोड़ ऊबड़खाबड़ स्थानों में रातभर भटकता रहा पर सबेरा होते होते फिर उसी महसूल की छावनी पर पहुँचा और उसे महसूल देना पड़ा। जहाँ एक कठिनाई से बचने के लिये अनेक उपाय निष्फल हों और अंत में उसी कठिनाई में फँसना पड़े वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(५२) घटप्रदीप न्याय—धड़ा अपने भीतर रखे हुए दीप का प्रकाश बाहर नहीं जाने देता। जहाँ कोई अपना ही भला चाहता है दूसरे का उपकार नहीं करता यहाँ यह प्रयुक्त होता है।

(५३) घुणाक्षर न्याय—घुनों के चालने से लकड़ी में अक्षरों के से आकार बन जाते हैं, यद्यपि घुन इन उद्देश्य से नहीं काटते कि अक्षर बनें। इसी प्रकार जहाँ एक काम करने में कोई दूसरी बात अनायस हो जाय वहाँ यह कहा जाता है।

(५४) चंपकपटवास न्याय—जिस कपड़े में चंपे का फूल रखा हो उसमें फूलों के न रहने पर भी बहुत देर तक महँक रहती है। इसी प्रकार विषय भोग का संस्कार भी बहुत काल तक बना रहता है।

(५५) जलतरंग न्याय—अलग नाम रहने पर भी तरंग जल से भिन्न गुण की नहीं होती। ऐसा ही अभेद सूचित करने के लिये इस उक्ति का व्यवहार होता है।

(५६) जलतुंबिका न्याय—(क) तूँबी पानी में नहीं डूबती, डुबाने से ऊपर आ जाती है। जहाँ कोई बात छिपाने से छिपनेवाली नहीं होती वहाँ इसे कहते हैं। (ख) तूँबी के ऊपर मिट्टी की चड़ आदि लपेटकर उसे पानी में डाले तो वह डूब जाती है पर कीजड़ धोकर पानी में डालें तो नहीं डूबती। इसी प्रकार जीव देहादि के नलों से युक्त रहने पर संसार सागर में निमग्न हो जाता है और मल आदि छूटने पर पार हो जाता है।

(५७) जलानयन न्याय—पानी 'लाओं' कहने से उसकै साथ बरतन का लाना भी समझ लिया जाता है क्योंकि बरतन के बिना पानी आवेगा किसमें।

(५८) तिलतंडुल न्याय—चावल और तिल की तरह मिली रहने पर भी अलग दिखाई देनेवाली वस्तुओं के संबंध में इसका प्रयोग होता है।

(५९) तृणजलौका न्याय—दे० 'तृणजलौका' शब्द।

(६०) दंडचक्र न्याय—जैसे घड़ा बनने में दंड, चक्र आदि कई कारण हैं वैसे ही जहाँ कोई बात अनेक कारणों से होती है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(६१) दंडापूप न्याय—कोई डंडे में बँधे हुए मालपूए छोड़कर कहीं गया। आने पर उसने देखा कि डंडे का बहुत सा भाग चूहे खा गए हैं। उसने सोचा कि जब चूहे डंडा तक खा गए तब मालपूए को उन्होंने कब छोड़ा होगा। जब कोई दुष्कर और कष्टसाध्य कार्य हो जाता है तब उसके साथ ही लगा हुआ सुखद और सहज कार्य अवश्य ही हुआ होगा यही सूचित करने के लिये यह कहावत कहते हैं।

(६२) दशम न्याय—दस आदमी एक साथ कोई नदी तैरकर पार गए। पार जाकर वे यह देखने के लिये सबको गिनने लगे कि कोई छूटा या वह तो नहीं गया। पर जो गिनता वह अपने को छोड़ देता इससे गिनने में नौ ही ठहरते। अंत में उस एक खोए हुए के लिये सबने रोना शुरू किया। एक चतुर पथिक ने आकर उनसे फिर से गिनने के लिये कहा। जब एक उठकर नौ तक गिन गया तब पथिक ने कहा 'दसवें तुम'। इसपर सब प्रसन्न हो गए। वेदांती इस न्याय का प्रयोग यह दिखाने के लिये करते हैं कि गुरु के 'तत्वमसि' आदि उपदेश सुनने पर अज्ञान और तज्जनित दुःख दूर हो जाता है।

(६३) देहलीदीपक न्याय—देहली पर दीपक रखने से भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला रहता है। जहाँ एक ही आयोजन से दो काम सधें या एक शब्द या बात दोनों ओर लगे वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।

(६४) नष्टाश्वरदग्धरथ न्याय—संस्कृत शास्त्रों में प्रसिद्ध एक न्याय जिसका तात्पर्य है, दो आदमियों का इस प्रकार मिलकर काम करना जिसमें दोनों एके दूसरे की चीजों का उपयोग करके अपना उद्देश्य सिद्ध करें। यह न्याय निम्नलिखित घटना या कहानी के आधार पर है। दो आदमी अलग अलग रथ पर सवार होकर किसी वन में गए। वहाँ संयोगवश आग लगने के कारण एक आदमी का रथ जल गया और दूसरे का घोड़ा जल गया। कुछ समय के उपरांत जब दोनों मिले तब एक के पास केवल घोड़ा और दूसरे के पास केवल रथ था। उस समय दोनों ने मिलकर एक दूसरे की चीज का उपयोग किया। घोड़ा रथ में जोता गया और वे दोनों

निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच गए। दोनों ने मिलकर काम चला लिया। इस प्रकार जहाँ दो आदमी मिलकर एक दूसरे की त्रुटि की पूर्ति करके काम चलाते हैं वहाँ इसे कहते हैं।

(६५) नारिकेलफलांबु न्याय—नारिकेल के फल में जिस प्रकार न जाने कहाँ से कैसे जल आ जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी किस प्रकार आती है नहीं जान पड़ता।

(६६) निम्नगाप्रवाह न्याय—नदी का प्रवाह जिस ओर को जाता है उधर रुक नहीं सकता। इसी प्रकार के अनिवार्य क्रम के दृष्टांत में यह कहावत है।

(६७) नृपनापितपुत्र न्याय—किसी राजा के यहाँ एक नाई नौकर था। एक दिन राजा ने उससे कहा कि कहीं से सबसे सुंदर बालक लाकर मुझे दिखाओ। नाई को अपने पुत्र से बढ़कर और कोई सुंदर बालक कहीं न दिखाई पड़ा और वह उसी को लेकर राजा के सामने आया। राजा उस काले कलूटे बालक को देख बहुत क्रुद्ध हुआ, पर पीछे उसने सोचा कि प्रेम या राग के वश इसे अपने लड़के सा सुंदर और कोई दिखाई ही न पड़ा। राग के वश जहाँ मनुष्य अंधा हो जाता है और उसे अच्छे बुरे की पहचान नहीं रह जाती वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।

(६८) पंकप्रक्षालन न्याय—कीचड़ लग जायगा तो धो डालेंगे इसकी अपेक्षा यही विचार अच्छा है कि कीचड़ लगने ही न पावे।

(६९) पंजरचालन न्याय—दस पक्षी यदि किसी पिंजड़े में बंद कर दिए जायँ और वे सब एक साथ यत्न करें तो पिंजड़े को इधर उधर चला सकते हैं। दस ज्ञानेन्द्रियाँ और दस कर्मेन्द्रियाँ प्राणरूप क्रिया उत्पन्न करके देह को चलाती हैं इसी के दृष्टांत में साख्यवाले उक्त न्याय करते हैं।

(७०) पाषाणेषक न्याय—ईंट भारी होती है पर उससे भी भारी पत्थर होता है।

(७१) पिष्टपेषण न्याय—पीसे को पीसना निरर्थक है। किए हुए काम को व्यर्थ जहाँ कोई फिर करता है वहाँ के लिये यह उक्ति है।

(७२) प्रदीप न्याय—जिस प्रकार तेल, बत्ती और आग इन भिन्न भिन्न वस्तुओं के मेल से दीपक जलता है उसी प्रकार सत्व, रज और तम इन परस्पर भिन्न गुणों के सहयोग से देह- धारण का व्यापार होता है। (सांख्य)।

(७३) प्रापाणक न्याय—जिस प्रकार घी, चीनी आदि कई वस्तुओं के एकत्र करने से बढ़िया मिठाई बनती है उसी प्रकार अनेक उपादानों के योग से सुंदर वस्तु तैयार होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही जाती है। साहित्यवाले विभाव, अनुभाव आदि द्वारा रस का परिपाक सूचित करने के लिये इसका प्रयोग प्रायः करते हैं।

(७४) प्रासादवासि न्याय—महल में रहनेवाला यद्यपि कामकाज के लिये नीचे उतरकर बाहर इधर उधर भी जाता है पर उसे प्रासादवासी ही कहते हैं इसी प्रकार जहाँ जिस विषय की प्रधानता होती है वहाँ उसी का उल्लेख होता है।

(७५) फलवत्सहकार न्याय—आम के पेड़ के नीचे पथिक छाया के लिये ही जाता है पर उसे फल भी मिल जाता है। इसी प्रकार जहाँ एक लाभ होने से दूसरा लाभ भी हो वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(७६) बहुवृत्तकृष्ट न्याय—एक हिरन को यदि बहुत से भेड़िए लगे तो उसके अंग एक स्थान पर नहीं रह सकते। जहाँ किसी वस्तु के लिये बहुत से लोग खींचाखींची करते हैं वहाँ वह यथास्थान वा समूची नहीं रह सकती।

(७७) विलवर्तिगोधा न्याय—जिस प्रकार बिल में स्थित गोह का विभाग आदि नहीं हो सकता उसी प्रकार जो वस्तु अज्ञात है उसके संबंध में भला बुरा कुछ नहीं कहा जा सकता।

(७८) ब्राह्मणग्राम न्याय—जिस ग्राम में ब्राह्मणों की बस्ती अधिक होती है उसे ब्राह्मणों का गाँव करते हैं यद्यपि उसमें कुछ और लोग भी बसते हैं। औरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही नाम लिया जाता है, यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(७९) ब्राह्मणअमण न्याय—ब्राह्मण यदि अपना धर्म छोड़ श्रमण (बौद्ध भिक्षुक) भी हो जाता है तब भी उसे ब्राह्मण श्रमण कहते

हैं। एक वृत्ति को छोड़ जब कोई दूसरी वृत्ति ग्रहण करता है तब भी लोग उसकी पूर्ववृत्ति का निर्देश करते हैं।

(८०) मज्जनोन्मज्जन न्याय—तैरना न जाननेवाला जिस प्रकार जल में पड़कर डूबता उतरता है उसी प्रकार मूर्ख या दुष्ट वादी प्रमाण आदि ठीक न दे सकने के कारण क्षुब्ध और व्याकुल होता है।

(८१) मंडूकतोलन न्याय—एक धूर्त बनिया तराजू पर सौदे के साथ मेढक रखकर तौला करता था। एक दिन मेढक कूदकर भागा और वह पकड़ा गया। छिपाकर की हुई बुराई का भडा एक दिन फूटता है।

(८२) रज्जुसर्प न्याय—जबतक दृष्टि ठीक नहीं पड़ती तबतक मनुष्य रस्सी को साँप समझता है इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य दुश्य जगत् को सत्य समझता है, पीछे ब्रह्मज्ञान होने पर उसका भ्रम दूर होता है और वह समझता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। (वेदांती)।

(८३) राजपुत्रव्याध न्याय—कोई राजपुत्र बचपन में एक ब्याध के घर पड़ गया और वहीं पलकर अपने को व्याधपुत्र ही समझने लगा। पीछे जब लोगों ने उसे उसका कुल बताया तब उसे अपना ठीक ठीक ज्ञान हुआ। इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य अपने को न जाने क्या समझा करता है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वह समझता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। (वेदांती)।

(८४) राजपुरप्रवेश न्याय—राजा के द्वार पर जिस प्रकार बहुत से लोगों की भीड़ रहती है पर सब लोग बिना गड़बड़ या हल्ला किए चुपचाप कायदे से खड़े रहते हैं उसी प्रकार जहाँ सुव्यवस्थापूर्वक कार्य होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(८५) रात्रिदिवस न्याय—रात दिन का फर्क। भारी फर्क।

(८६) लूतातंतु न्याय—जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से ही सूत निकालकर जाला बनाती है और फिर आप ही उसका संहार करती है इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही सृष्टि करता है और अपने में उसे लय करता है।

(८७) लोष्ट्रलगुड न्याय—ढेला तोड़ने के लिये जैसे डंडा होता है उसी प्रकार जहाँ एक का दमन करनेवाला दूसरा होता है वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(८८) लोह चुंबक न्याय—लोहा गतिहीन और निष्क्रिय होने पर भी चुंबक के आकर्षण से उसके पास जाता है उसी प्रकार पुरुष निष्क्रिय होने पर भी प्रकृति के साहचर्य से क्रिया में तत्पर होता है। (सांख्य)।

(८९) वरगोष्ठी न्याय—जिस प्रकार वरपक्ष और कन्यापक्ष के लोग मिलकर विवाह रूप एक ऐसे कार्य का साधन करते हैं जिससे दोनों का अभीष्ट सिद्ध होता है उसी प्रकार जहाँ कई लोग मिलकर सबके हित का कोई काम करते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(९०) वह्निधूम न्याय—धूमरूप कार्य देखकर जिस प्रकार कारण रूप अग्नि का ज्ञान होता है उसी प्रकार कार्य द्वारा कारण अनुमान के संबंध में यह उक्ति है (नैयायिक)।

(९१) विल्वखल्लाट (खल्लाट) न्याय—धूप से व्याकुल गंजा छाया के लिये बेल के पेड़ के नीचे गया। वहाँ उसके सिर पर एक बेल टूटकर गिरा। जहाँ इष्टसाधन के प्रयत्न में अनिष्ट होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(९२) विषवृक्ष न्याय—विष का पेड़ लगाकर भी कोई उसे अपने हाथ से नहीं काटता। अपनी पाली पोसी वस्तु का कोई अपने हाथ से नाश नहीं करता।

(९३) वीचितरंग न्याय—एक के उपरांत दूसरी, इस क्रम से बरा- बर आनेवाली तरंगों के समान। नैयायिक ककारादि वर्णों की उत्पत्ति वीचितरंग न्याय से मानते हैं।

(९४) वीजांकुर न्याय—बीज से अंकुर या अंकुर से बीज है यह ठीक नहीं कहा जा सकता। न बीज के बिना अंकुर हो सकता है न अंकुर के बिना। बीज और अंकुर का प्रवाह अनादि काल से चला आता है। दो संबद्ध वस्तुओं के नित्य प्रवाह के दृष्टांत में वेदांती

इस न्याय को कहते हैं।

(१५) वृक्षप्रकंपन न्याय—एक आदमी पेड़ पर चढ़ा। नीचे से एक ने कहा कि यह डाल हिलाओ, दुसरे ने काहा यह डाल हिलाओ। पेड़ पर चढ़ा हुआ आदमी कुछ स्थिर न कर सका कि किस डाल को हिलाऊँ। इतने में एक आदमी ने पेड़ का धड़ ही पकड़कर हिला डाला जिससे सब डालें हिल गईं। जहाँ कोई एक बात सबके अनुकूल हो जाती है वहाँ इसका प्रयोग होता है।

(१६) वृद्धकुमारिका न्याय या वृद्धकुमारी वाक्य न्याय— कोई कुमारी तप करतो करती बुझी हो गई। इंद्रो ने उससे कोई एक वर माँगने के लिये कहा। उसने वर माँगा कि मेरे बहुत से पुत्र सोने के बरतनों में खूब धी दूध और अन्न खायँ। इस प्रकार उसने एक ही वाक्य में पति, पुत्र गोधन धान्य सब कुछ माँग लिया। जहाँ एक की प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त हो वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(१७) शतपत्रभेद न्याय—सौ पत्ते एक साथ रखकर छेदने से जान पड़ता है कि सब एक साथ एक काल में ही छिद गए पर वास्तव में एक एक पत्ता भिन्न भिन्न समय में छिदा। कालांतर की सूक्ष्मता के कारण इसका ज्ञान नहीं हुआ। इस प्रकार जहाँ बहुत से कार्य भिन्न भिन्न समयों में होते हुए भी एक ही समय में हुए जान पड़ते हैं वहाँ यह दृष्टांत वाक्य कहा जाता है। (सांख्य)।

(१८) श्यामरक्त न्याय—जिस प्रकार कच्चा काला धड़ा पकने पर अपना श्याम गुण छोड़ कर रक्तगुण धारण करता है उसी प्रकार पूर्व गुण का नाश और अपर गुण का धारण सूचित करने के लिये यह उक्ति कही जाती है।

(१९) श्यालकशुनक न्याय—किसी ने एक कुत्ता पाला था और उसका नाम अपने साले का नाम रखा था। जब वह कुत्ते का नाम लेकर गालियाँ देता तब उसकी स्त्री अपने भाई का आप- मान समझकर बहुत चिढ़ती। जिस उद्देश्य से कोई बात नहीं की जाती वह यदि उससे हो जाती है तो यह कहावत कही जाती है।

(१००) संदंशपतित न्याय—सँड़सी जिस प्रकार अपने बीच आई हुई वस्तु के पकड़ती है उसी प्रकार जहाँ पूर्व ओर उत्तर पदार्थ द्वारा मध्यस्थित पदार्थ का ग्रहण होता है वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है।

(१०१) समुद्रवृष्टि न्याय—समुद्र में पानी बरसने से जैसे कोई उपकार नहीं होता उसी प्रकार जहाँ जिस बात की कोई आवश्यकता या फल नहीं वहाँ यदि वह की जाती है तो यह उक्ती चरितार्थ की जाती है।

(१०२) सर्वापेक्षा न्याय—बहुत से लोगों का जहाँ निमंत्रण होता है वहाँ यदि कोई सबके पहले पहुँचता है तो उसे सबकी प्रतीक्षा करनी होती है। इस प्रकार जहाँ किसी काम के लिये सबका आसरा देखना होता है वहाँ उक्ति कही जाती है।

(१०३) सिंहवलोकन न्याय—सिंह शिकार मारकर जब आगे बढ़ता है तब पीछे फिर फिरकर देखता जाता है। इसी प्रकार जहाँ अगली और पिछली सब बातों की एक साथ आलोचना होती है वहाँ इस उक्ति का व्यवहार होता है।

(१०४) सूचीकटाह न्याय—सूई बनाकर कड़ाह बनाने के समान। किसी लोहार से एक आदमी ने आकर कड़ाह बनाने को कहा। थोड़ी देर में एक दूसरा आया, उसने सूई बनाने के लिये कहा। लोहार ने पहले सूई बनाई तब कड़ाह। सहज काम पहले करना तब कठिन काम में हाथ लगाना, इसी के दृष्टांत में यह कहा जाता है।

(१०५) सुंदोपसुंद न्याय—सुंद और उपसुंद दोनों भाई बड़े बली दैत्य थे। एक स्त्री पर दोनों मोहित हुए। स्त्री ने कहा दोनों में जो अधिक बलवान होगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। परिणाम यह हुआ कि दोनों लड़ मरे। परस्पर के फूट से बलवान् से बलवान् मनुष्य नष्ट हो जाता है यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(१०६) सोपानारोहण न्याय—जिस प्रकार प्रासाद पर जाने के लिये एक एक सीढ़ी क्रम से चढ़ना होता है उसी प्रकार किसी बड़े काम के करने में क्रम क्रम से चलना पड़ता है।

(१०७) सोपानावरोहण न्याय—सीढ़ियाँ जिस क्रम से चढ़ते हैं उसी के उलटे क्रम से उतरते हैं। इसी प्रकार जहाँ किसी क्रम से चलकर फिर उसी के उलटे क्रम से चलना होता है (जैसे, एक बार एक से सौ तक गिनती गिनकर फिर सौ से निम्नानवे, अठानवे इस उलटे क्रम से गिनना) वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(१०८) स्थविरलगुड न्याय—बुद्धे के हाथ फेंकी हुई लाठी जिस प्रकार ठीक निशाने पर नहीं पहुँचती उसी प्रकार किसी बात के लक्ष्य तक न पहुँचने पर यह उक्ति कही जाती है।

(१०९) स्थूणानिखनन न्याय—जिस प्रकार घर के छप्पर में चाँड़ देने के लिये खंभा गाड़ने में उसे मिट्टी आदि डालकर दृढ़ करना होता है उसी प्रकार युक्ति उदाहरण द्वारा अपना पक्ष दृढ़ करना पड़ता है।

(११०) स्थूलारुंधती न्याय—विवाह हो जाने पर वर और कन्या को अरुंधती तारा दिखाया जाता है जो दूर होने के कारण बहुत सूक्ष्म हैं और जल्दी दिखाई नहीं देता। अरुंधती दिखाने में जिस प्रकार पहले सप्तर्षि को दिखाते हैं जो बहुत जल्दी दिखाई पड़ता है और फिर उँगली से बताते हैं कि उसी के पास वह अरुंधती है देखो, इसी प्रकार किसी सूक्ष्म तत्व का परिज्ञान कराने के लिये पहले स्थूल दृष्टांत आदि देकर क्रमशः उस तत्व तक ले जाते हैं।

(१११) स्वामिभृत्य न्याय—जिस प्रकार मालिक का काम करके नौकर भी स्वामी की प्रसन्नता से अपने को कृतकार्य समझता है उसी प्रकार जहाँ दूसरे का काम हो जाने से अपना भी काम या प्रसन्नता हो जाय वहाँ के लिये यह उक्ति है।